www.vitragvani.com

प्रवचन नं. ११ गाथा-९ शनिवार, माघ कृष्ण १२, दिनांक ०७.०१.१९६७

'पुरुषार्थसिद्धि-उपाय', 'अमृतचन्द्राचार्य' कृत। गाथा ९ शुरु होती है। पुरुषार्थसिद्धि के पुरुष की व्याख्या करते हैं।

भावार्थ : 'पुरु' उत्तम चेतना गुण में 'सेते' स्वामी होकर प्रवर्तन करे उसको पुरुष कहते हैं। पुरुष अर्थात्? इसकी व्याख्या करते हैं। फिर अर्थ, अर्थात् उसका प्रयोजन और सिद्धि अर्थात् क्या किया जा सकता है, उसका उपाय। ऐसे चार बोल इसमें हैं। पुरुष की व्याख्या, कि अपना जो उत्तम चेतनागुण — जानने-देखनेरूप गुण, उसमें स्वामी होकर, उसका मालिक होकर, नाथ होकर उसमें प्रवर्ते, उसका नाम पुरुष कहते हैं।

ज्ञान, दर्शन, चेतना के नाथ को पुरुष कहते हैं। चेतना की व्याख्या हुई दो — जानना और देखना। ऐसी जो चेतना, उसका जो नाथ, उसे पुरुष कहते हैं। कल यहाँ तक आया था। **यही चेतना अव्याप्ति, अतिव्याप्ति, और असम्भव इन तीन दोषों से रहित इस आत्मा का असाधारण लक्षण है।** क्या कहते हैं? यह चेतना, यह आत्मा का सब दोषरहित लक्षण है - ऐसा कहते हैं। कौन-कौन से दोष हैं? कि अव्याप्ति एक दोष है, अतिव्याप्ति दोष है और असम्भव (दोष है)। इतन तीन दोषरहित यह आत्मा का असाधारण चेतना लक्षण है। इसके द्वारा आत्मा जाना जा सकता है।

अव्याप्ति दोष उसे कहते हैं कि जिसको जिसका लक्षण कहा गया हो.... अव्याप्ति (अर्थात्) सब में वह लक्षण व्यापता नहीं। **उसे जिसका लक्षण कहा, वह उसके किसी लक्ष्य में हो और किसी लक्ष्य में न हो।** उसे अव्याप्ति दोष कहते हैं। **परन्तु कोई आत्मा, चेतनारहित नहीं है।** परन्तु कोई आत्मा, चेतनारहित नहीं है; इसलिए उसे अव्याप्तिदोष लागू नहीं पड़ता। समझ में आया? 'जैन सिद्धान्त प्रवेशिका' में आता है। अव्याप्ति — नहीं व्यापना। चेतनापना तो आत्मा की प्रत्येक अवस्था में उसका लक्षण व्यापता है। किसी में व्यापे और किसी में न हो — ऐसा यह लक्षण नहीं है। क्या कहते हैं इस अव्याप्ति का लक्षण?

यदि आत्मा का लक्षण रागादि कहें... राग, वह आत्मा का लक्षण कहें **तो**

www.vitragvani.com

अव्याप्ति दूषण लगता है क्योंकि रागादिक संसारी जीवों में हैं, (परन्तु) सिद्ध जीवों में नहीं हैं। तो सभी जीवों को लागू नहीं पड़ा। आगे चेतना के तीन लक्षण कहेंगे, हों! चेतना के तीन (लक्षण) — ज्ञानचेतना, कर्मचेतना, कर्मफलचेतना — ऐसे कहेंगे। वह तो चेतना के प्रकार वर्णन कर करेंगे। चेतना जो है जानना-देखना, वह इसका असाधारण लक्षण है। जो कहीं अन्यत्र हो नहीं और इसकी (आत्मा की) सभी अवस्थाओं में हो और इसके अतिरिक्त दूसरों में न हो। कहो, समझ में आया इसमें? 'जैन सिद्धान्त प्रवेशिका' में शुरुआत में आता है, यह आता है। आत्मा का लक्षण रागादि कहें कि राग, वह आत्मा को बतलाता है – ऐसा कहें, उसका लक्षण कहें, तब तो सिद्ध में राग नहीं है; इसलिए यह लक्षण सच्चा नहीं है।

जो लक्षण लक्ष्य में हो और अलक्ष्य में भी हो.... जिसे सिद्ध करना है, उसमें भी वह लक्षण हो और नहीं सिद्ध करना, ऐसी दूसरी चीज में भी वह हो, **उसे अतिव्याप्ति दूषण कहते हैं...** उसे अतिव्याप्ति नामक दोष कहा जाता है। **परन्तु चेतना, जीव पदार्थ के अलावा किसी अन्य पदार्थ में नहीं पायी जाती।** जानने-देखने का जो चेतना लक्षण, वह आत्मा के अतिरिक्त अन्यत्र नहीं है; इसलिए यह अतिव्याप्ति दोष भी चेतना लक्षण में नहीं आता। यह न्याय देते हैं। **यदि आत्मा का लक्षण अमूर्तत्व कहें....** ऐसा। ऐसी शैली (की है)। उसमें बाद में कहा तो इसमें भी बाद में कहते हैं। यदि आत्मा का लक्षण अरूपी है — ऐसा कहें, अमूर्त है – ऐसा कहें **तो अतिव्याप्ति दूषण लगता है। कारण कि जिस तरह आत्मा अमूर्तिक है, उसी तरह धर्म, अधर्म, आकाश और काल भी अमूर्तिक हैं....** चारों ही हैं न अमूर्तिक? आत्मा में ही अमूर्तपना है और दूसरों में नहीं – ऐसा नहीं है। जो आत्मा में ही हो, वह उसका वास्तविक लक्षण कहलाता है। दो बोल हुए। कौन से दो बोल?

अव्याप्ति और अतिव्याप्ति दोष, चेतना लक्षण में नहीं आते, क्योंकि चेतना लक्षण आत्मा की प्रत्येक दशा में उसे होता है और उसका लक्षण उन दूसरों में नहीं होता। प्रत्येक में होता है; इसलिए अव्याप्ति नहीं और दूसरों में नहीं होता; इसलिए अतिव्याप्ति नहीं।

अब, असम्भव की व्याख्या करते हैं। **तथा जो प्रमाण में न आये, उसे**

www.vitragvani.com

असम्भव कहते हैं। क्या कहते हैं ? जिसके ज्ञान में वह न आवे, प्रमाण में न आवे, उसे असम्भव कहते हैं। **चेतना, जीव पदार्थ में, प्रत्यक्ष और परोक्ष प्रमाण से जानी जाती है।** चेतना, जीव नामक पदार्थ में या तो प्रत्यक्ष ज्ञात होती है या परोक्ष ज्ञात होती है। प्रमाण से वह ज्ञात हो - ऐसी चीज है। समझ में आया ? **चेतना, जीव पदार्थ में, प्रत्यक्ष....** ज्ञात होती है वेदन से-स्वसंवेदन से अथवा अनुमान परोक्ष प्रमाण से भी ज्ञात होती है कि यह ज्ञान, वह आत्मा; चेतना, वह आत्मा। इसलिए प्रमाण से भी वह चेतना लक्षण अबाधितरूप से सिद्ध होता है। उसे असम्भव दोष नहीं लगता। उसमें यदि मूर्तपना कहो तो असम्भव (दोष लगता है)। यह प्रमाण में-ज्ञान में है नहीं।

यदि आत्मा का लक्षण जड़पना कहें.... तो वह प्रमाण में नहीं आता - ऐसा कहते हैं। वह तो पर में गया। अपने ज्ञान में प्रत्यक्षरूप से-परोक्षरूप से वह नहीं आता; प्रत्यक्षरूप से, परोक्षरूप से तो चेतना से ही आत्मा ज्ञात होता है। समझ में आया ? **यदि आत्मा का लक्षण जड़पना कहें तो असम्भव दोष लगता है, कारण कि यह प्रत्यक्ष प्रमाण से बाधित है।** प्रत्यक्ष प्रमाण में जड़पना, आत्मा में नहीं है; प्रत्यक्ष प्रमाण से चेतनास्वरूप आत्मा है — ऐसा सिद्ध होता है। कहो, समझ में आया ? प्रमाण डालकर 'जैन सिद्धान्त प्रवेशिका' की अपेक्षा थोड़ा अधिक स्पष्ट किया है।

इस प्रकार तीनों दोष रहित आत्मा का चेतन लक्षण दो प्रकार है। भगवान आत्मा-चेतनास्वभाव, उसके चेतनास्वभाव द्वारा वह आत्मा ज्ञात हो ऐसा है। लक्ष्य हो सके, चेतना लक्षण द्वारा लक्ष्य हो सकता है। अमूर्त से नहीं, राग से नहीं और मूर्त से भी नहीं। मूर्त अर्थात् जड़। जड़ (लक्षण) से भी वह ज्ञात नहीं होता। समझ में आया ? राग द्वारा ज्ञात नहीं होता - ऐसा कहते हैं। ऐ...ई...! राग द्वारा नहीं जाना। वह विकल्प है, उसके द्वारा आत्मा ज्ञात नहीं होता। जानने-देखने का स्वभाव — चेतना, उसके द्वारा यह चेतन, उसके द्वारा यह आत्मा, लक्षण से लक्षित होता है। राग इसका लक्षण नहीं कि जिससे इसका लक्ष्य हो। समझ में आया ?

सामान्य रीति से सिद्ध करें, तब राग को भी लक्षण (कहें)। प्रवचनसार में है। प्रवचनसार में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य लिये हैं न ? यह साधारण बात ली है। राग होवे, वहाँ

www.vitragvani.com

आत्मा होता है – ऐसा बताना है। वहाँ ऐसा लिया है। यहाँ तो अकेली चेतना। आगे बाद में भाग करेंगे। कर्मचेतना आदि। ये चेतना के प्रकार हैं, परन्तु चेतना से ऐसा ज्ञात होता है कि यह आत्मा है, वही उसका वास्तविक लक्षण है। लो! आत्मा को प्राप्त करने के लिये चेतना साधन है – ऐसा कहते हैं। यह तो सब बात उड़ गयी। व्यवहार और दया, दान के विकल्प से आत्मा प्राप्त होता है – यह बात इसमें नहीं आती। कहो, समझ में आया इसमें?

भगवान आत्मा सच्चिदानन्दस्वरूप शुद्ध आनन्दमूर्ति, चिद्स्वरूप इस चेतना द्वारा जाना जा सकता है। उसके अन्दर के ज्ञान का जागृतपना होकर वह आत्मा में ज्ञात हो – ऐसा है। राग से, मूर्त से, अमूर्त से ज्ञात हो — ऐसा वह नहीं। समझ में आया?

यह चेतना... देखो! यह धर्म की बात चलती है। आत्मा, ज्ञान–दर्शन के परिणाम चेतना द्वारा आत्मा है — ऐसा ज्ञात होता है – ऐसा कहते हैं। शरीर द्वारा – यह मूर्त है, यह जड़ है, वाणी–मन से ज्ञात हो – ऐसा नहीं है; रागादि से ज्ञात हो – ऐसा नहीं है। दोनों प्रकार से निकाल दिया। अजीव और आस्रव दो तत्त्व निकाल दिये। लो! दूसरे प्रकार से कहा। समझ में आया? भगवान आत्मा, इसमें महा अतीन्द्रिय आनन्द का सागर है। उसमें अतीन्द्रिय शान्ति पूर्ण पड़ी है, उसमें पूर्ण ज्ञान की शक्ति का सत्व पूरा पड़ा है। ऐसे भगवान आत्मा को श्रद्धा आदि से वर्णन न करते हुए, ज्ञान से वर्णन किया है, क्योंकि सब जगह वे होते नहीं। ज्ञान—जानने–देखने के स्वभाव से वह पकड़ा जा सकता है, लक्ष्य लिया जा सकता है। इस लक्षण द्वारा लक्ष्य लिया जा सकता है। जानने–देखने के भाव द्वारा वह ध्येय में आ सकता है – ऐसा कहते हैं।

यह चेतना दो प्रकार से है। **एक ज्ञानचेतना और दूसरी दर्शनचेतना।** इसकी व्याख्या। चेतना के दो प्रकार के नाम दिये। अब इनकी व्याख्या। **जो पदार्थों को साकाररूप विशेषता से जाने, उसे ज्ञानचेतना कहते हैं।** यह ज्ञान, पदार्थ को साकार अर्थात् विशेषरूप से, भेद से, अनेक प्रकार के उसके प्रकार हों, उन द्वारा विशेषरूप से जाने, उसे ज्ञानचेतना कहते हैं। ज्ञान ऐसे विशेष सबको जाने। यह आत्मा है, यह गुण है, यह है, वह है। ज्ञान में अनेक प्रकार की विशेषताओं सहित जो ज्ञान में आवे, उसे–साकाररूप विशेष को ज्ञानचेतना कहा जाता है।

www.vitragvani.com

आकार अर्थात् उसमें रूपी आकार आता होगा या नहीं? साकार है न आकार? क्या आकार आता होगा? ऐ...ई! जैन सिद्धान्त प्रवेशिका में आया नहीं? उसमें आया नहीं साकार-बाकार का? ज्ञान में भिन्न-भिन्नता पदार्थ की जैसी गुण आदि की है — ऐसा विशेषरूप से यह द्रव्य, यह गुण — ऐसे भेदरूप ज्ञान में ज्ञात हो, उस ज्ञान को साकार कहने में आता है। है तो अरूपी; साकार-फाकार यहाँ रूपी नहीं। समझ में आया? एक स्थानकवासी साधु (संवत्) १९९९ में मिला था वहाँ, ज्ञान को साकार कहा है, हों! मूर्त कहा, रूपी कहा है। कहो, मारवाड़ी था, मारवाड़ी जवान। खास मिलने के लिये आया था। घोड़ा होता है न? क्या कहलाता है वह? रेसकोर्स। यह मूर्त है, मूर्त, हों! साकार, ज्ञान तो साकार, रूपी है। जवान साधु था। वे 'किशनलालजी' साधु थे न? किशनलालजी मारवाड़ी, सौभाग्यमलजी और उनके साथ थे वे। वह फिर उनकी ओर आ चढ़ा। यह साकार कहते हैं, इतना भी पता नहीं होता। साकार अर्थात् मूर्तपना हुआ, साकार अर्थात् उसमें आकार पड़ते हैं, आकार। ज्ञान को आकार होते हैं। अब उस आकार की यहाँ कहाँ बात है? यहाँ तो ज्ञान भिन्न-भिन्न प्रकार से द्रव्य-गुण-पर्याय के जैसे भेद हैं, उस प्रकार से विशेष से जाने, उसे यहाँ साकार कहने में आता है।

मुमुक्षु : .....

उत्तर : यह आता है, साकार विशेष स्व आकार। जोड़णी कोष में (आता है)। तब वह उलझा होगा और कितने वर्ष की दीक्षा हो। यह कुछ पता नहीं पड़ता (कि) क्या वस्तु है? सीधे हो गये साधु, लो! और दूसरे भी बेचारे जय नारायण! वस्तु क्या है — इसका अभी दृष्टि का पता नहीं पड़ता, ज्ञान का पता नहीं पड़ता, वर्तन तो कहाँ से आया?

कहते हैं कि साकार अर्थात् **विशेषता से जाने...** देखो! वस्तु को यह आत्मा चैतन्यस्वरूप से है, आनन्दरूप है, ज्ञान आदि भिन्न-भिन्न प्रकार के गुण के आकार अर्थात् विशेषरूप से जाने, उसे साकारचेतना / ज्ञानचेतना कहा जाता है।

जो पदार्थों को निराकाररूप सामान्यता से देखे.... इसकी व्याख्या साथ की साथ है। साकाररूप विशेषपना, निराकाररूप सामान्यपना - ऐसा। जो दर्शनचेतना सामान्य-भेद पाड़े बिना, 'है सामान्य सत्तारूप' — इतना। सत्ता है — ऐसा भी नहीं है। है — ऐसा

www.vitragvani.com

सामान्यरूप से जिसके दर्शन में, उपयोग में आवे, भेद न आवे — ऐसी दर्शनचेतना को अनाकारचेतना कहा जाता है। समझ में आया? **यही चेतना....** यही चेतना दो प्रकार से जो कही। पहली एक प्रकार से चेतना कही; उसके दो प्रकार किये — ज्ञान और दर्शन। वही चेतना अब तीन प्रकार से वर्णन करते हैं। समझ में आया?

भगवान आत्मा अनन्त गुण शुद्ध चैतन्यस्वरूप आत्मा। पुरुष कहा न? चैतन्यस्वरूप आत्मा, उसमें अनन्त गुणरूप आत्मा। उसका चेतना लक्षण है। वह चेतना से जाना जा सकता है। चेतना दो प्रकार की — साकार और निराकार, ज्ञान और दर्शन। उसके ही अब तीन प्रकार किये जाते हैं। एक, दो और तीन — ऐसे प्रकार पाड़े। पहला चेतना लक्षण एक प्रकार पाड़ा; उसके दो भेद–ज्ञान और दर्शन कहे। उसके तीन भेद पाड़ते हैं।

यही चेतना परिणामों की अपेक्षा से.... देखो! समझ में आया? पर्याय की अपेक्षा से, अवस्था की अपेक्षा से तीन प्रकार की चेतना कहने में आती है। **जब यह चेतना शुद्ध ज्ञानस्वभावरूप से परिणमन करती है....** जब वह चेतना, शुद्ध चैतन्य का लक्ष्य करके शुद्ध चेतनारूप से निर्मलपने — सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्रपने परिणमे, **तब ज्ञानचेतना कही जाती है,....** उसे ज्ञानचेतना कहते हैं। पहली ज्ञानचेतना की व्याख्या साकाररूप से की थी और दर्शन की निराकाररूप से। अब इस चेतना के परिणाम के तीन प्रकार (कहते हैं)। समझ में आया?

जब यह चेतना.... भगवान आत्मा की चेतना, चेतन की चेतना। शुद्धज्ञान–स्वभावरूप — अपने शुद्ध चैतन्यस्वभाव – उसरूप से वह ज्ञान, ज्ञान के परिणमनरूप परिणमे, तब उसे शुद्ध ज्ञान चेतना, उसे मोक्षमार्ग की पर्याय को ज्ञानचेतना कहने में आता है। समझ में आया?

भगवान आत्मा अनन्त शक्ति गुण सम्पन्न प्रभु को चेतना द्वारा पकड़ा जा सकता है। उस चेतना के दो प्रकार पाड़कर, अब उसके परिणाम के तीन प्रकार कहते हैं। उसमें चेतना शुद्धस्वभाव को पकड़कर जो ज्ञान निर्मलपने अपने परिणमन की शुद्धता द्वारा, शान्ति द्वारा जो ज्ञानचेतना परिणमे, उसे ज्ञानचेतना अर्थात् मोक्ष के मार्ग की चेतना कहा जाता है। समझ में आया? कहो, माँगीरामजी! ऐसे मोक्ष के मार्ग की चेतना।

www.vitragvani.com

भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यधातु का लक्ष्य करके जो ज्ञान पवित्ररूप से सम्यक् श्रद्धा, ज्ञान और शान्तिरूप से, स्व-संवेदन के ज्ञानरूप जो चेतना का परिणमन होता है, उसे यहाँ ज्ञानचेतना कहते हैं। ज्ञान में एकाग्र हुआ, जो चेतना वह परिणाम, ज्ञानचेतना हुई। ज्ञानचेतना, वह आत्मा को पूर्ण मुक्तिरूपी दशा का कारण है। समझ में आया?

जब रागादि कार्यरूप से परिणमन करती है.... दूसरे कार्यरूप से नहीं, दूसरे के कार्य कर नहीं सकता। शरीर का कार्य, वाणी का कार्य या यह पर की दया पालने का (कार्य), यह तो यहाँ बात है नहीं। मात्र वह जब शुभ और अशुभरागरूपी कार्य... लो! शुभ या अशुभरागरूपी कार्यरूप। वह ज्ञानचेतना अथवा दर्शनचेतना है, जो चेतना यह ऐसे रागरूप अर्थात् राग के कार्यरूप हो, तब उसे कर्मचेतना कहते हैं। उस राग में चेतना एकाग्र हो गयी। उस कर्म अर्थात् रागरूपी कार्य में चेतना एकाग्र हो गयी; इसलिए उसे कर्मचेतना कहा जाता है, कि जो कर्मचेतना बन्ध का कारण है। समझ में आया? राग-द्वेष, पुण्य-पाप के परिणामरूप, पुण्य के भावरूप भी चेतना परिणमे तो वह रागरूप से परिणमित हुई चेतना है - ऐसा कहते हैं। उसे कर्मचेतना कहते हैं। शुभरागरूप परिणमे तो उसे कर्मचेतना कहते हैं। यह चेतना, आत्मा के मोक्ष के मार्ग में विघ्न करनेवाली है। समझ में आया?

जब हर्ष-शोकादि वेदनरूप कर्म के फलरूप परिणमन करती है.... वजन यहाँ है। पहले कार्यरूप था, यहाँ फलरूप है। जब वह चेतना, हर्ष और शोक, रति और अरति, दिलगिरी और हर्ष — ऐसे विकार के वेदनरूप कर्म के अर्थात् राग-द्वेष के फलरूप परिणमे, विकारी परिणाम से परिणमे... ऐसा कहकर यह कहा कि वह कर्म के उदयरूप नहीं परिणमति; पर की अवस्थारूप वह चेतना नहीं होती। चेतना अपने में हर्ष और शोकरूप परिणमति है, उसे कर्मफलचेतना कहा जाता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : मूल तो कर्म की चेतना।

उत्तर : यह कर्म अर्थात् यह कर्म राग-द्वेष, यह कर्म। राग-द्वेष, यह इसका कर्म, कार्य। उसका फल, वह हर्ष और शोक, उस समय। समझ में आया, इसमें? कर्मचेतना कही न? वह कर्मचेतना कोई जड़चेतना कही है? राग और द्वेष, शुभ और अशुभभावरूप, कार्यरूप परिणमे-कार्यचेतना। वस्तुतः तो उस समय में उसके हर्ष-शोकरूप परिणमे,

www.vitragvani.com

उसे कर्मफलचेतना कहते हैं। यह आ गया है, समयसार की १०२ गाथा। जिस समय में कर्मचेतना, उस समय में उसका फल है। उस समय ही वेदता है – ऐसा कहते हैं। दोनों के भिन्न लक्षण हैं। एक कार्यरूप और एक फलरूप है। बाकी है एक साथ। समझ में आया इसमें?

इसमें तो बहुत सादी और सीधी भाषा की बात है। वह कहे —कठिन भाषा पड़ती है। भाषा (कठिन) नहीं, भाव कठिन पड़े—ऐसा कह। भाव समझना नहीं, मूल भाव को समझने की दरकार नहीं, फिर यह स्थूलरूप से कुछ ऐसा होवे और वैसा होवे और ऐसा हो। पर की भक्ति से कल्याण हो जाता हो या इससे हो जाता हो या दया, दान से होता हो या भगवान की ऐसे स्तुति करते-करते होता हो, ऐसे सरल तो समझ में आये। परन्तु वह स्तुति तेरी ही नहीं; वह तो जड़ की भाषा है। पूजा-भक्ति में शरीर की क्रिया (होवे), वह जड़ की है; तेरा भाव होवे, वह राग है, वह तो पुण्य है। वह पुण्य तो कर्मचेतना है। आहाहा! और उस समय हर्ष आ जाए ऐसे... आ...हा...! यह भगवान की भक्ति की, वह कर्मफल-चेतना है; वह कोई ज्ञानचेतना नहीं। समझ में आया?

हर्ष–शोकादि.... दु:ख आदि, रति-अरति आदि वेदनरूप। **वेदनरूप कर्म के फलरूप परिणमन करती है, तब कर्मफलचेतना कही जाती है। इस प्रकार चेतना अनेक स्वांग करती है....** अनेक स्वांग दशा में करे। **फिर भी चेतना का अभाव कभी नहीं होता।** चाहे तो ज्ञानचेतनारूप हो, चाहे तो रागरूप से कर्मचेतना हो अथवा तो वेदनरूप-कर्म (फलरूप हो), परन्तु चेतना, चेतनापना छोड़कर जड़ हो जाए या पर हो जाए—ऐसा है नहीं। कहो, समझ में आया? **इस भाँति चेतना लक्षण से विराजमान जीव नामक पदार्थ को पुरुष कहते हैं।** लो! ऐसे चेतना लक्षण से। मूल तो चेतना लक्षण, हों! वे तो उसकी दशा बताई। उससे विराजमान भगवान आत्मा जीव नाम का पदार्थ, उसे पुरुष कहने में आता है। यह 'पुरुषार्थसिद्धि-उपाय' की व्याख्या करते हैं। पुरुष—ऐसा आत्मा। समझ में आया? उसका अर्थ, प्रयोजन, उसकी सिद्धि, प्राप्ति, उसका उपाय, मोक्ष का मार्ग।

पुन: कैसा है पुरुष? 'अस्ति पुरुषश्चिदात्मा विवर्जित: स्पर्शगन्ध–रसवर्णै:।'

www.vitragvani.com

यह तो आया। **'गुणपर्ययसमवेतः'** यह आया, तीसरा पद आया अब, ९वीं गाथा का तीसरा पद। **'गुणपर्ययसमवेतः'** चौथा बाद में आयेगा। **'गुणपर्ययसमवेतः'** सहित है। समझ में आया? **'समाहितः समुदयव्ययध्रौव्यैः'** यह चौथा पद है, इस चौथे की व्याख्या आयेगी। और कैसा है पुरुष अर्थात् यह आत्मा? **स्पर्श, रस, गन्ध और वर्ण से रहित है।** तीसरे पद की व्याख्या। **आठ प्रकार के स्पर्श,....** है, वे इसमें नहीं। **दो प्रकार की गन्ध,....** है, वह आत्मा में नहीं। **पाँच प्रकार का रस....** है, मीठा-कड़वा, वह आत्मा में नहीं। **पाँच प्रकार का वर्ण,...** है। सफेद काला, वह आत्मा में नहीं। **ऐसे जो पुद्गलों के लक्षण हैं,....** ये जो पुद्गल के लक्षण, **उनसे रहित (यह आत्मा) अमूर्तिक है।** अभी मूर्त से पृथक् पाड़ते हैं। समझ में आया? उसमें आठ स्पर्श, पाँच वर्ण, दो गन्ध और पाँच रस—ऐसा जो पुद्गल का लक्षण है, वह इसके (आत्मा के) स्वरूप में नहीं, अभी नहीं, हों! कोई कहे कि अभी मूर्त है—ऐसा कहते हैं। सिद्ध हो, तब अमूर्त हो।

मुमुक्षु : ऐसा आता है।

उत्तर : आता है, किस अपेक्षा से? समझ में आया? आता है तो उसमें भी नहीं आता? सर्व कर्मरहित अमूर्तशक्ति। यह तो बताते हैं, उसका स्वरूप बताते हैं कि ऐसा अब अत्यन्त रहित हुआ, परन्तु अभी ही रहित है। सम्बन्धरहित हुआ, अभी सम्बन्धरहित हुए। वह सम्बन्ध—निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध टूट गया। समझ में आया?

इस विशेषण से पुद्गलद्रव्य से भिन्नता प्रगट की। भगवान आत्मा कर्म, शरीर, वाणी, आदि से भिन्न है-ऐसा कहते हैं। यह शरीर, वाणी और कर्म—ये सब वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्शवाले पदार्थ हैं, इनसे रहित है। इसका अर्थ हुआ (कि) कर्म से रहित है, शरीर से रहित है, वाणी से रहित है। कहो, समझ में आया इसमें? दाल, भात, शाक, रोटी जो वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्शवाले हैं, उनसे आत्मा रहित है।

कारण कि यह आत्मा अनादि से सम्बन्धरूप जो पुद्गल द्रव्य है.... अब कहेंगे। पहले वर्ण का लिया है न दूसरा पद? अनादि से सम्बन्धरूप पुद्गल है, कर्म, शरीर आदि सम्बन्ध है—तैजस, कार्मण आदि। **उसमें अहंकार-ममकाररूप प्रवर्तन करता है।** अपनी जाति को इस ओर में अरूपी और आनन्दकन्द है, उसे जाना नहीं; इसलिए उस

www.vitragvani.com

पुद्गल के सम्बन्ध में इसकी दृष्टि होने से, उसमें इसका अहंकार—'यह मैं और ये मेरे, यह मैं, यह मेरे।' यह शरीर, मैं; यह मेरे; कर्म, मैं और कर्म मेरे; वाणी, मैं और वाणी मेरी—ऐसा अहंकार-ममकाररूप प्रवर्तता है। समझ में आया? सम्बन्ध है ऐसे; वस्तु उससे रहित है, परन्तु सम्बन्ध में इसका लक्ष्य अनादि से होने से, उसमें जो पुद्गल, कर्म, शरीर, वाणी आदि वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्शवाले पदार्थ (हैं), 'उनमें मैं, वे मेरे'—ऐसे अहंकार-ममकाररूप प्रवर्तता है। यह मिथ्यादृष्टि का मिथ्यात्वभाव है।

जो अपने चैतन्य पुरुष को अमूर्तिक जाने.... इतनी बात अभी कहनी है, उस पुद्गल से पृथक् करना है, इस अपेक्षा से, हों! इसका (आत्मा का) लक्षण तो चेतना कहा था। रंग, गन्ध, रस, स्पर्श से, धन-धान्य आदि से, कर्म-नोकर्म से रहित है। तब सहित क्या है? कि इसके गुण और पर्यायसहित है।

गुण-पर्यायों सहित विराजमान है। वहाँ गुण का लक्षण सहभूत है। व्याख्या करते हैं। गुण से विराजमान आत्मा है। आत्मा, गुण से सहित है, गुण से सहित है। वर्ण, गन्ध, रस से रहित है, गुण से सहित है। गुण किसे कहते हैं? **गुण का लक्षण सहभूत है। सह अर्थात् द्रव्य के साथ, भू अर्थात् सत्ता।** द्रव्य के साथ जिसका अस्तित्व है, उसे गुण कहते हैं। आत्मा द्रव्य है, उसके साथ ज्ञान, दर्शन, आनन्द, अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्व आदि साथ में रहते हैं; इसलिए उन्हें गुण कहा जाता है। कहो, समझ में आया इसमें? गुण सहित है। वर्ण / मूर्त रहित है। **सह अर्थात् द्रव्य के साथ, भू अर्थात् सत्ता।** ऐसा। द्रव्य के साथ जिनकी सत्ता है। जैसे द्रव्य स्वयं वस्तुरूप है, वैसे गुण भी उसके साथ सत्तारूप से भिन्न नहीं है।

द्रव्य में जो सदाकाल पाया जावे उसे गुण कहते हैं। पूरी व्याख्या की। **द्रव्य में जो सदाकाल पाया जावे उसे गुण कहते हैं।** भगवान आत्मा में सदाकाल रहते हैं, वैसे भाव को गुण कहा जाता है। बहुत सादी संक्षिप्त भाषा में बहुत (स्पष्ट किया है)। तेरा क्या?—ऐसा कहते हैं। तेरा क्या नहीं? तो कहते हैं, तेरा नहीं यह कर्म, शरीर, वाणी, मन, वर्ण, गन्ध, रस (स्पर्श) तेरे नहीं। तेरा क्या? तेरा तू द्रव्य वस्तु है, उसके साथ अस्तिरूप जो गुण हैं, उन सहित है, वे तेरे। समझ में आया?

www.vitragvani.com

आत्मा में गुण दो प्रकार के हैं। ज्ञान-दर्शनादि असाधारण गुण हैं,.... एक तो ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि आत्मा में ही है, दूसरे द्रव्य में नहीं; इससे उन्हें असाधारण अर्थात् कहीं अन्यत्र है और यहाँ है — ऐसा नहीं। असाधारण अर्थात् आत्मा में ही है। जानना-देखना, आनन्द-शान्ति इत्यादि। ज्ञान-दर्शन आदि भगवान आत्मा के साथ, द्रव्य के साथ अस्तिरूप रहनेवाले (हैं)। आत्मा, जो द्रव्य है, उसके साथ अस्तिरूप रहनेवाले जो ज्ञान, दर्शन, आनन्द, वे असाधारण अस्तिरूप से रहनेवाले हैं। असाधारण अर्थात् दूसरे में नहीं, ऐसे अस्तिरूप से रहनेवाले हैं। समझ में आया? **वह अन्य द्रव्य में नहीं पाये जाते।** वे गुण दूसरे द्रव्यों में नहीं होते। भगवान आत्मा में ज्ञानगुण त्रिकाल अस्तिरूप से आत्मा के साथ, दर्शनगुण त्रिकाल अस्तिरूप से, आनन्दगुण त्रिकाल अस्तिरूप से (है)। वे असाधारण अर्थात् उसमें (आत्मा में) ही हैं और दूसरों में नहीं। देखो! अस्ति-नास्ति (की है)। वे दूसरे द्रव्यों में नहीं होते; इसलिए असाधारण कहे जाते हैं।

अस्तित्व,... होनापना एक गुण आत्मा में है, परन्तु ऐसा होनापना (अस्तित्व) का गुण तो दूसरे पाँचों में है। छहों द्रव्यों में अस्तित्व-होनापना, सत् है, छह का होनेपने का गुण। है द्रव्य, उसका सत्व होनापना—ऐसा अस्तित्व नाम का गुण आत्मा में भी है और दूसरे द्रव्यों में भी है; इसलिए उस अस्तित्वगुण को असाधारण न कहकर, साधारण है—ऐसा कहते हैं। साधारण अर्थात् यही अस्तित्व-गुण दूसरों में है और यही गुण यहाँ है — ऐसा साधारण नहीं, परन्तु यह अस्तित्वगुण यहाँ है, ऐसा ही एक दूसरा अस्तित्व-गुण दूसरे द्रव्य में है, ऐसा। समझ में आया?

वस्तुत्व,.... वस्तुपना-अपना प्रयोजन सिद्ध करे। वह आत्मा में भी है और परमाणु में भी है। वस्तु है न? वस्तु का वस्तुपना; आत्मा का आत्मापना; परमाणु का परमाणुपना; धर्मास्तिकाय का धर्मास्तिकायपना—ऐसे छह द्रव्यों में वस्तुपना यह गुण है, जो प्रयोजन वस्तु को स्वयं को सिद्ध करे। ऐसा वस्तुत्वगुण, आत्मा में भी है, दूसरों में भी है; इसलिए इसे साधारण गुण कहा जाता है। यह का यही वस्तुत्वगुण दूसरा है, इसलिए साधारण - ऐसा नहीं, परन्तु जैसा यहाँ वस्तुत्वगुण है, वैसा ही दूसरे अन्य द्रव्यों में है, इसलिए उसे साधारण कहा जाता है। कहो, समझ में आया?

www.vitragvani.com

यह तो पहले का एकड़ा सीखने लगे है। ऐ... मोहनभाई! कभी एकड़ा भी सीखा नहीं इसके आत्मा का। उस धूल का सीखा। सीख-सीखकर मर गये ऐसे के ऐसे सब। एल.एल.बी. के पूंछड़े लगाये, हैरान... हैरान... दुःखी... दुःखी... दुःखी... दस-दस हजार के वेतनदार, पच्चीस-पच्चीस हजार के वेतनदार, लाख-लाख के वेतनदार हैरान... हैरान। नौकरी क्या, यह पैसे का लालच है, वही स्वयं दुःख है और सेठ अच्छा होवे और स्वयं सेठ जैसा काम करता होवे। इसे ममता है न? यही महादुःख है। उसमें कहाँ इस पढ़ाई में सुख है? समझ में आया?

प्रमेयत्व.... किसी भी ज्ञान में पदार्थ ज्ञात हो—ऐसा पदार्थ में एक प्रमेयत्व नाम का गुण है। ज्ञान में जो कुछ ज्ञात हो, ज्ञात होने योग्य, ऐसा एक आत्मा में गुण है। ऐसा गुण दूसरे सब में भी है। **प्रमेयत्वादि...** संक्षिप्त कर दिया। अगुरुलघु, द्रव्यत्व, प्रदेशत्व आदि **साधारण गुण हैं,....** इन्हें साधारण गुण कहते हैं, क्योंकि **जो अन्य द्रव्यों में भी पाये जाते हैं।** अपने में भी अस्तित्व है, वस्तुत्व है, प्रमेयत्व है, द्रव्यत्व है, अगुरुलघुत्व है, प्रदेशत्व है। ऐसे-ऐसे अनन्त साधारण गुण हैं, ऐसे दूसरों में भी है; इसलिए इन्हें साधारण कहते हैं। आत्मा में ही हो और दूसरों में न हो, उसे असाधारण कहते हैं। यह गुण की व्याख्या हुई।

पर्याय का लक्षण क्रमवर्ती है। पहले में कहा था न? स्वभूत का अर्थ किया। स्व और सत्ता, साथ में रहनेवाले। **पर्याय का लक्षण क्रमवर्ती है।** पर्याय का लक्षण ही द्रव्य में क्रम-क्रम से वर्ते, उसे कहते हैं। इसमें पूरा विवाद। यह तो क्रम से वर्ते, परन्तु बाद में यही पर्याय होगी—ऐसा नहीं। इस क्रमवर्ती का अर्थ ही यह है कि जो पर्याय इस समय है, वह की वह दूसरे समय नहीं, उस दूसरे समय वह दूसरी; वह भी उस प्रकार की, उस काल की वही दूसरे समय हो, ऐसा। यह द्रव्य के स्वकाल का अस्तित्व है और परकाल से नास्तित्व है।

प्रत्येक द्रव्य के द्रव्य, क्षेत्र, भाव से अस्ति है; परद्रव्य को क्षेत्र, भाव से नास्ति है, परन्तु प्रत्येक द्रव्य वर्तमान एकसमय के स्वकाल की पर्याय से, उस समय की स्वकाल की पर्याय से अस्ति है; दूसरे के स्वकाल की पर्याय से नास्ति है। ऐसा-ऐसा समय का

www.vitragvani.com

अंश क्रमवर्ती अनादि-अनन्त है। आत्मा के साथ वह क्रमवर्ती है, सहभूत नहीं; सहभूत तो गुण के साथ है, त्रिकाल साधारण या असाधारण। भगवान आत्मा के साथ-साथ रहनेवाले-होनेवाले गुण साधारण या असाधारण, जैसे द्रव्य हैं, वैसे साथ ही गुण अनादि -अनन्त है। पर्याय ऐसी नहीं है। पर्याय का लक्षण क्रमवर्तना है, क्रमवर्तना है, क्रम से वर्तना है, क्रम से वर्तती है, क्रम से होती है, क्रम से होती है, क्रम से परिणमती है। क्रमवर्ती-क्रम से वर्तनेवाला। पर्याय का लक्षण क्रम से वर्तनेवाली, क्रम से होनेवाली, क्रम से होनेवाली—यह पर्याय का लक्षण है। स्व के साथ रहनेवाला, त्रिकाल रहनेवाला, साथ में सत्ता द्रव्य, वैसी ही सत्ता त्रिकाल साथ में रहनेवाली, उसे गुण कहते हैं। समझ में आया?

द्रव्य-गुण-पर्याय का पता नहीं होता और हम धर्मी हैं, सामायिक करते हैं, प्रौषध करते हैं, प्रतिक्रमण करते हैं... किसका तेरा प्रतिक्रमण, कहाँ आया? पर्याय में आया? जड़ में आया? तो कहे—यह पर्याय-बर्याय पता नहीं। एक साधु को पूछा—यह तुम्हारी सामायिक चारित्र क्या कहलाता है? त्रस या स्थावर? त्रस, स्थावर, हों! अपने वह पूछते नहीं पर्याय। यह सामायिक है, वह त्रस कहलाती है या स्थावर? कि हमारे गुरु ने सिखाया नहीं। आहाहा! 'सुन्दर बोरा' के उपाश्रय में थे। 'विरमगाँव' का था, मोहनलालजी के पास दीक्षा ली थी। नाम क्या था, वह भूल गये। 'नागरदास।' परन्तु वे बेचारे उलझ जाएँ। द्रव्य-गुण-पर्याय होवे तो न समझे, परन्तु इनने त्रस और स्थावर नाम तो सुने हों न? ऐसा। द्रव्य-गुण-पर्याय न सुना हो। साधु हुआ बेचारा। वस्त्र धोने को लिया था और फिर मिलान नहीं खाया और अकेला रह गया। कहा, तुम्हारी सामायिक, यह चारित्र कहलाती है, वह त्रस है या स्थावर? मेरे गुरु ने मुझे सिखाया नहीं। ठीक किया, गुरु ने नहीं सिखाया। अन्धा खाता... साथ उतरे थे। उपाश्रय साथ था न! आहाहा... साधारण मनुष्य... आहाहा!

मुमुक्षु : .....

उत्तर : नहीं, नहीं; उसे बेचारे को कहाँ समझना? उसे सीखने की कहाँ बात है?

कहते हैं, द्रव्य में अर्थात् आत्मा में गुण साथ में त्रिकाल रहनेवाले और पर्याय क्रमवर्ती रहनेवाली है तो सही, परन्तु पर्याय क्रमवर्ती है, क्रम से वर्तती है; एक साथ सभी

www.vitragvani.com

पर्यायें वर्तती नहीं। आत्मा में गुण तो एक साथ अनन्त वर्तते हैं। जैसे पर्याय एक साथ नहीं, क्रम से... क्रम से... क्रम से... वर्तती है। इस क्रम में ही पूरी बात आ जाती है। क्रमबद्ध जहाँ आया, वहाँ भड़के... भड़के।

जो द्रव्य में अनुक्रम से उत्पन्न हो,.... इसका स्पष्टीकरण करते हैं। यह गुण और पर्याय तो सबका स्वरूप है, परन्तु अपने यहाँ आत्मा में उतारते हैं। **जो द्रव्य में अनुक्रम से उत्पन्न हो,....** गुण जो होते हैं, वे एकसाथ होते हैं। आत्मा वस्तु है, उसके गुण एकसाथ वर्तते हैं, एकसाथ वर्तते हैं, परन्तु जो द्रव्य में क्रमवर्ती ऐसी पर्याय (है वह) अनुक्रम से उपजती है, अनुक्रम से उपजती है। देखो! अनुक्रम शब्द प्रयोग किया है। अनुक्रम से एक के बाद एक... एक के बाद एक... एक के बाद एक उपजती है। **द्रव्य में अनुक्रम से उत्पन्न हो,....** अनुक्रम से उपजती है। समझ में आया? इसका अर्थ ही हुआ कि एक समय में जो पर्याय है, वह दूसरे समय नहीं होती; दूसरे समय में दूसरी, तीसरे समय में तीसरी—ऐसे अनुक्रम से ही उसका—पर्याय का उपजना होता है। गुण हैं, वे अक्रम हैं। आत्मा में–वस्तु में ज्ञान–दर्शन आदि सहभूत गुण, वे अक्रम हैं, पर्यायें क्रम से हैं। अक्रम–एक साथ, पर्यायें अनुक्रम से। समझ में आया? माँगीरामजी! आहाहा!

कदाचित्.... अनुक्रम से उपजती है–एक बात की। पर्याय का लक्षण क्रमवर्ती है। क्यों? कि वह अनुक्रम से उपजती है; इसलिए क्रमवर्ती है, एकसाथ वर्तती नहीं, अनुक्रम से उपजती है। **कदाचित्–कोई वार हो....** क्योंकि एक पर्याय तो एक समय ही होती है। कदाचित् वह पर्याय कोई बार अर्थात् एक समय ही हो, **उसे पर्याय कहते हैं।** वह पर्याय कदाचित्, एक समय ही होती है, वह पर्याय दूसरे समय में नहीं होती; इसलिए कदाचित् अर्थात् कोई बार होती है, ऐसा। कदाचित् अर्थात् कोई बार होती है, इसलिए जो एक ही समय में हो, दूसरे समय न हो, **उसे पर्याय कहते हैं।** कहो, समझ में आया इसमें? यह तो समझ में आये ऐसा है, हों! इसमें नये एकडिया को समझ में आये ऐसा है। प्रगटपने की ही यह पर्याय की बात है। अनुक्रम से उपजती है, प्रगटरूप से क्रम से ही उपजती है।

आत्मा में पर्याय दो प्रकार की हैं। अब पहले जो गुण दो प्रकार के कहे थे न? असाधारण और साधारण; वैसे ही आत्मा में कोई बार होती–क्रम से वर्तती, अनुक्रम

www.vitragvani.com

से उपजती। क्रम से वर्तती, अनुक्रम से उपजती, कोई बार होती। कोई बार (अर्थात्) एक समय। एक ही समय में पर्याय होती है, एक ही समय में होती है, कोई बार अर्थात् एक ही समय में होती है, दूसरे समय नहीं होती। भले छह-बारह महीने, परन्तु कोई बार अर्थात् जिस समय में हुई, वह कोई बार। जिस समय में हो, वह कोई बार, सदा ही बार नहीं। गुण हैं, वे सदा बार, सदाकाल और यह कोई काल, ऐसा है। पहला (गुण) अक्रम तो यहाँ (पर्याय में) क्रम है। (वे) एक साथ में रहे हैं तो यह अनुक्रम से उपजती है। यहाँ (गुण में) उपजना नहीं और एकसाथ रहते हैं; यह (पर्याय) अनुक्रम से उपजती है; (गुण) सदाकाल होते हैं, तब यह कोई बार होती है, एक समय में होती है। गुण सदाकाल होते हैं, तब पर्याय एक काल होती है—ऐसा है। कोई बार अर्थात् एक काल। समझ में आया? राजमलजी! यह तो बहुत सादी भाषा में है। यह तो सब एकड़या की भाषा है। इसका पता नहीं पड़ता।

आत्मा में पर्याय दो प्रकार की हैं। यह पर्याय जो क्रम से वर्ते, अनुक्रम से उपजे, कोई काल में अर्थात् एक समय ही हो, उस पर्याय के दो प्रकार हैं। **जो नर-नारकादि आकाररूप....** नर-नारकादि अन्दर आकार, हों! इस शरीर का आकार नहीं। अन्दर आत्मा के प्रदेश का मनुष्य की देह के आकाररूप स्वयं से हुआ आकार। यह नर-नारकादि आकाररूप और **सिद्ध के आकाररूप....** दो... लेनी है न यहाँ? सिद्ध को भी आकार अन्तिम (शरीर प्रमाण) असंख्य प्रदेश का आकार है। **उसे व्यंजनपर्याय कहते हैं।** उसे व्यंजनपर्याय कहते हैं। द्रव्य की आकृति की पर्याय को व्यंजनपर्याय कहते हैं। समझ में आया? यह एक पर्याय।

ज्ञानादि गुणों का भी स्वभाव अथवा विभावरूप परिणमन है,.... ज्ञानादि गुण में भी स्वाभाविक अगुरुलघु आदि और विभावरूप विकार आदि **परिणमन है, वह छह प्रकार से हानि-वृद्धिरूप है, उसे अर्थपर्याय कहते हैं।** पर्याय में षटगुण-हानिवृद्धि हो, पर्याय में—अवस्था में, उसे अर्थपर्याय कहते हैं। पहली आकार की थी, यह दूसरे सब अनन्त गुणों की स्वभाव या विकारी परिणमन। छह प्रकार हानि-वृद्धि—अनन्त, असंख्य और संख्य हानिवृद्धि। **इन गुण-पर्यायों से आत्मा की तादात्मक एकता है।**

www.vitragvani.com

यह गुण त्रिकाल रहनेवाले और पर्याय कोई बार अनुक्रम से उपजती, वर्तती, उसके साथ आत्मा का तादात्मक स्वरूप है, तादात्म्यरूप है, एकरूप है; उससे पृथक् नहीं। लो! कल आया था। पर्याय इस द्रव्य से अभिन्न है या भिन्न है—यह प्रश्न था? फूलचन्दजी का। सुना था? अभिन्न है। अभिन्न है तो पर्याय पर से हो तो द्रव्य भी पर से हो। द्रव्य से पर्याय अभिन्न है या भिन्न? कथंचित् अभिन्न। कथंचित् अभिन्न हो तो पर्याय पर से हो। कथंचित् अभिन्न है तो द्रव्य पर से हो। आहाहा!

देखो! इससे **तादात्मक एकता है।** वस्तु में अनन्त साधारण गुण हैं, जो दूसरे में भी हों; अनन्त असाधारण गुण हैं, जो दूसरे में नहीं और अपने में हों; और पर्यायें—अर्थ, व्यंजनपर्याय आदि, ये सब पर्यायें और गुण, आत्मा के साथ तद्रूप से हैं, एकरूप से हैं, एक प्रदेश से हैं; असंख्यप्रदेश में एकरूप से सब हैं। **इस विशेषण से आत्मा का विशेष्य जाना जा सकता है।** लो! ऐसे गुण और पर्याय के विशेषण से विशेष्य ऐसा जो आत्मद्रव्य, उसे जाना जा सकता है। कहो, समझ में आया? अब, चौथे पद की व्याख्या करेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)